खोज

पंखे की खोज

दुनिया का पहला बिजली पंखा अमेरिकी इंजीनियर और आविष्कारक शूयलर स्काट व्हीलर ने 1886 में बनाया था। 1882 में व्हीलर को बिजली की क्षमता का अहसास हुआ। उनके द्वारा विकसित पहले बिजली के पंखे में केवल दो ब्लेड थे, इसमें एक बेहद खतरनाक खुली मोटर का उपयोग किया गया था। ये पंखा तब डायरेक्ट करंट (डीसी) से चलता था। इसे पीतल का बनाया गया था। इसे तब "बज फैन" के नाम से जाना जाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका पेटेंट कार्यालय ने 1885-86 को आधिकारिक तौर पर उनके आविष्कार को मंजूरी दी थी।

स्काट व्हीलर का ये पंखा बहुत तेजी से लोकप्रिय हुआ था। जल्द ही अमेरिकी इलेक्ट्रिक मोटर कंपनी क्रॉकर एंड कर्टिस इसे बेचने लगी थी। इसी तकनीक के आधार पर फिर सीलिंग फैन और कई तरह के फैन बनाए गए थे। वहीं काफी हद तक एयर कंडीशनर का आविष्कार भी इसी पंखे को आधार बनाकर किया गया था। बता दें कि 1890 के दशक में डीसी बिजली सप्लाई की जगह एसी बिजली की सप्लाई घरों में पहुंचने लगी थी। तब ये बिजली के पंखे और कॉमन हो गए थे। 1800 के दशक के अंत से पहले बहुत अधिक गर्म होना एक रोजमर्रा की समस्या थी।

वैज्ञानिक परिचय

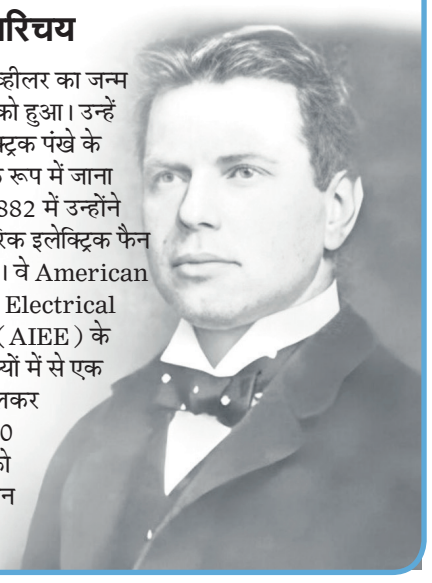

शूयलर स्कॉट व्हीलर का जन्म 17 मई 1860 को हुआ। उन्हें आधुनिक इलेक्ट्रिक पंखे के आविष्कारक के रूप में जाना जाता है। वर्ष 1882 में उन्होंने पहला व्यावहारिक इलेक्ट्रिक फैन विकसित किया। वे American Institute of Electrical Engineers (AIEE) के संस्थापक सदस्यों में से एक थे, जो आगे चलकर IEEE बना। 20 अप्रैल 1923 को व्हीलर का निधन हो गया।

पृथ्वी अपनी रक्षा कैसे करती है और कैसे जीवन के बने रहने के लिए उपर्युक्त अध्ययन बहुत जरूरी हैं, यह हमें मालूम होता है इन अध्ययनों के डाटा का विश्लेषण करने से . आमजन को विज्ञान की इन गूढ़ बातों से मतलब नहीं कि आकाशगंगा में हमारी पृथ्वी को क्या झेलना पड़ता है और कैसे यह अपनी रक्षा करती है। पृथ्वी पर दूरसंचार रेडियो तरंगों से होता है और इसमें पृथ्वी के निकट अंतरिक्ष में घूमने वाले उन्नत उपग्रह लगातार ऐसी घटनाओं पर नजर रखते हैं, जिनके अत्यधिक गतिविधि से यह प्रभावित होकर जीवन को अस्त-व्यस्त कर सकता है। पृथ्वी के सेहत पर नजर रखने के जो भी उपकरण और सेटेलाइट टेक्नोलॉजी निर्मित की जाती है, उस पर अत्यधिक निवेश की जरूरत होती है। इसके लिए उन्नत देशों ने अनेक अंतरिक्ष निगरानी संगठन बनाए हुए हुए हैं। डाटा भी शेयर होता है।

सूर्यास्त के बाद धरती से निकलता है रहस्यमय विकिरण

रशियन एकेडमी ऑफ़ साइंसेज के हायर स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स एंड स्पेस रिसर्च के रिसर्चर्स ने अरासे सैटेलाइट से सात साल तक डेटा का एनालिसिस किया और पहली बार पृथ्वी के नए रेडियो एमिशन हेक्टोमीटर कॉन्टिनम के बारे में डिटेल में बताया, जिसे 2017 में खोजा गया था। अरासे, जिसे पहले एक्सप्लोरेशन ऑफ़ एनर्जाइज़ेशन एंड रेडिएशन इन जियोस्पेस के नाम से जाना जाता था, वैन एलन बेल्ट्स की स्टडी करने वाला एक साइंटिफिक सैटेलाइट है। इसे जेएएक्सए या जाक्सा के इंस्टीट्यूट ऑफ स्पेस एंड एस्ट्रोनॉटिकल साइंस ने डेवलप किया था। पता चला कि यह रेडिएशन सूरज डूबने के कुछ घंटे बाद होता है और सूरज उगने के एक से तीन घंटे बाद गायब हो जाता है। ज्यादातर यह गर्मियों के महीनों में रिकॉर्ड किया गया था, बसंत और पतझड़ में कम। हालांकि, 2022 के बीच तक, जब सूरज बढ़ी हुई एक्टिविटी के फेज में गया, तो रेडिएशन पूरी तरह से गायब हो गया, लेकिन साइंटिस्ट्स का कहना है कि सिग्नल वापस आ सकता है। यह स्टडी जर्नल ऑफ जियोफिजिकल रिसर्चः स्पेस फिजिक्स में पब्लिश हुई है। पृथ्वी लगातार रेडियो तरंगें निकाल रही है, जो नैचुरल इलेक्ट्रोमैग्नेटिक सिग्नल हैं जो पृथ्वी के पास के स्पेस से निकलते हैं। उनके एनालिसिस से यह समझने में मदद मिलती है कि सूरज मैग्नेटोस्फीयर पर कैसे असर डालता है - पृथ्वी के चारों ओर का वह एरिया जहां मैग्नेटिक फील्ड इसे बाहरी असर से बचाता है। इस रीजन या क्षेत्र में अलग-अलग तरह के रेडियो एमिशन बनते हैं, और उनमें से एक है हेक्टोमीटर कॉन्टिनम। यह 600 से 1700 किलोहर्ट्ज़ की रेंज में कमजोर नैचुरल रेडिएशन है, जो आम रेडियो स्टेशनों की ब्रॉडकास्टिंग फ्रीक्वेंसी से काफी कम है। रेडिएशन के सोर्स ग्रह के काफी करीब हैं - लगभग एक या दो पृथ्वी रेडियस की ऊंचाई पर, जहां मैग्नेटिक फील्ड अभी भी चार्ज्ड पार्टिकल्स की मूवमेंट को कंट्रोल करता है। पृथ्वी पर, ऐसी तरंगों का पता नहीं लगाया जा सकता क्योंकि आयनोस्फीयर की घनी परतें उन्हें पूरी तरह से सोख लेती हैं, इसलिए माइनिंग और मेटलर्जी कॉम्प्लेक्स को सिर्फ़ स्पेसक्राफ्ट की मदद से ही देखा जा सकता है।

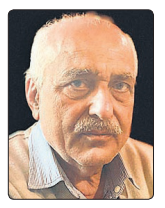

रणबीर सिंह
विज्ञान लेखक

इस बारे में, हेक्टोमीटर कॉन्टिनम की खोज काफी हाल ही में, 2017 में, जापानी सैटेलाइट अरासे की वजह से हुई थी। उस समय से, सिग्नल कभी-कभी रिकॉर्ड किया गया है, और इसके व्यवहार की कोई पूरी तस्वीर नहीं थी। माइनिंग और मेटलर्जी कॉम्प्लेक्स की प्रॉपर्टीज को बताने और इसके शुरू होने के मैकेनिज्म को समझाने के लिए, रशियन एकेडमी ऑफ साइंसेज के स्पेस रिसर्च इंस्टीट्यूट और हायर स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के फिजिक्स फैकल्टी के रिसर्चर्स ने सैटेलाइट से सारा उपलब्ध डेटा इकट्ठा किया और ट्रैक किया कि यह रेडिएशन समय के साथ कैसे बदलता है। ऐसा करने के लिए, उन्होंने सात साल, 2017-2023 के लिए, माइनिंग और मेटलर्जी कंपनियों के रजिस्ट्रेशन के लगभग एक हजार एपिसोड का एनालिसिस किया। नतीजों से पता चला कि सिग्नल का दिखना नियर-अर्थ प्लाज्मा में होने वाले प्रोसेस से जुड़ा है - यह एक ऐसा क्षेत्र है जो चार्ज्ड पार्टिकल्स से भरा होता है जो पृथ्वी के मैग्नेटिक फील्ड और सोलर विंड के असर में चलते हैं। लेखकों के अनुसार, हेक्टोमीटर कंटिन्यूअम डबल प्लाज्मा रेजोनेंस के कारण होता है, यह एक ऐसी घटना है जिसमें प्लाज्मा में दो तरह के ऑसिलेशन एक साथ होते हैंः प्लाज्मा का नेचुरल ऑसिलेशन और पृथ्वी की मैग्नेटिक फील्ड लाइनों के चारों ओर इलेक्ट्रॉनों का घूमना। यह को-इंसिडेंस अस्थिरता पैदा करता है, जिसके कारण प्लाज्मा रेडियो वेव्स निकालता है। इसके लिए खास हालात की जरूरत होती है, जैसे एक खास प्लाज्मा डेंसिटी और ज्यादा एनर्जी वाले गर्म इलेक्ट्रॉन की मौजूदगी। पता चला कि रेडिएशन सिर्फ़ रात में होता है और सूरज उगने के एक से तीन घंटे बाद गायब हो जाता है।

साइंटिस्ट इसे इस बात से समझाते हैं कि सूरज का सुबह का रेडिएशन प्लाज्मा की डेंसिटी बढ़ाता है और रेडियो वेव बनने के लिए ज़रूरी हालात को खत्म कर देता है। सूरज डूबने के बाद, सिग्नल भी तुरंत नहीं दिखता, बल्कि कुछ घंटों बाद दिखता है, जब आयनोस्फीयर को ठंडा होने औरमाइनिंग और मेटलर्जी कॉम्प्लेक्स के एक्साइटेशन के लिए जरूरी पैरामीटर को ठीक करने का समय मिल जाता है। रोजाना के साइकिल के अलावा, रेडिएशन में मौसमी खासियतें भी होती हैंः यह गर्मियों में ज्यादा रिकॉर्ड होता था, पतझड़ और बसंत में कम। 2022 के बीच से, सिग्नल गायब हो गया है। साइंटिस्ट इसका कारण सूरज का ज्यादा एक्टिव फेज में बदलना मानते हैंः इन महीनों में, इसकी सतह पर ज़्यादा धब्बे थे, 10.7 सेंटीमीटर की वेवलेंथ पर रेडियो एमिशन बढ़ा और अल्ट्रावॉयलेट लेवल बढ़ा। इस वजह से, प्लाज्मा का स्ट्रक्चर बदल गया, और कंटीन्यूअम बनने के हालात गायब हो गए। जाक्सा, या जापान एयरोस्पेस एक्सप्लोरेशन एजेंसी, जापान की सरकारी एजेंसी है जो रिसर्च, टेक्नोलॉजी डेवलपमेंट और सैटेलाइट को ऑर्बिट में लॉन्च करने के लिए ज़िम्मेदार है।

सन 2003 में बनी जाक्सा को जापान के स्पेस प्रोग्राम को आसान बनाने के लिए तीन अलग-अलग ऑर्गनाइज़ेशन को मिलाकर बनाया गया था। यह कई बड़े प्रोजेक्ट्स में शामिल रही है, जिसमें इंटरनेशनल स्पेस स्टेशन के लिए मॉड्यूल बनाना और चांद और एस्टेरॉयड की स्टडी के लिए मिशन चलाना शामिल है। ज़्यादा जानकारी के लिए, आप जाक्सा की ऑफिशियल वेबसाइट पर जा सकते हैं।

वैज्ञानिक फैक्ट

ठंड में मुंह से क्यों निकलती है भाप

सर्दियों में जैसे ही तापमान गिरता है, लोगों के मुंह से धुएं जैसी भाप निकलती दिखाई देने लगती है। बचपन में हममें से कई लोग यह देखने की होड़ लगाते थे कि कौन ज्यादा 'धुआं' निकाल सकता है, लेकिन क्या आपने कभी सोचा है कि यह भाप आखिर आती कहां से है और गर्मियों में यह बिल्कुल क्यों नहीं दिखती? आइए आज आपको बताते हैं कि आखिर यह प्रोसेस क्यों होता है?

हमारे शरीर का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा पानी से बना होता है और हमारे फेफड़ों (लंग्स) में जो हवा होती है, वह नमी यानी वॉटर वेपर से भरी होती है। यह हवा हमारे शरीर के तापमान के बराबर गर्म होती है। गर्म हवा ठंडी हवा की तुलना में ज्यादा नमी अपने अंदर रोक सकती है। यही कारण है कि जब सर्दियों में हम सांस बाहर छोड़ते हैं, तो बाहर की ठंडी हवा उस गर्म और नम सांस का तापमान बहुत तेजी से गिरा देती है। जैसे ही यह सांस ओसांक (Dew Point) तक पहुंचती है, उसमें मौजूद वॉटर वेपर गैस से तरल अवस्था में बदल जाता है। इस प्रक्रिया को कंडेन्सेशन (Condensation) कहते हैं। इस दौरान बेहद छोटे-छोटे पानी के कण बनते हैं, जो हमें धुएं या कोहरे (फॉग) की तरह दिखाई देते हैं। असल में यह धुआं नहीं, बल्कि पानी की सूक्ष्म बूंदें होती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार, जब तापमान शून्य डिग्री या उससे नीचे चला जाता है, तो यही भाप जमकर बर्फ के कणों में भी बदल सकती है।

गर्मियों में क्यों नहीं दिखती भाप ?

गर्मियों में वातावरण का तापमान अधिक होता है। ऐसी स्थिति में जब हम सांस छोड़ते हैं, तो बाहर की हवा पहले से ही गर्म होती है और अधिक नमी धारण कर सकती है। इसलिए सांस में मौजूद वॉटर वेपर गैस की अवस्था में ही रहता है और कंडेन्सेशन नहीं होता। इसी वजह से गर्मियों में मुंह से भाप दिखाई नहीं देती।

रोचक किस्सा

समुद्र की नीली रंगत का रहस्य

भारत के महान वैज्ञानिक सर चंद्रशेखर वेंकट रमन (सी. वी. रमन) से जुड़ा एक रोचक और प्रेरक किस्सा उनकी खोजी प्रवृत्ति को बखूबी दर्शाता है। यह किस्सा उस खोज की शुरुआत है, जिसने आगे चलकर उन्हें नोबेल पुरस्कार तक पहुंचाया।

1904 में लॉर्ड रेले को फिजिक्स का नोबेल मिला था। उन्होंने बताया था कि आसमान नीला क्यों दिखता है और समुद्र का नीला रंग आसमान के प्रतिबिंब के कारण है। सन् 1921 में सी. वी. रमन ब्रिटेन समुद्री मार्ग से जा रहे थे। जहाज जब गहरे समुद्र में आगे बढ़ रहा था, तो उन्होंने देखा कि समुद्र का पानी गहरा नीला दिखाई दे रहा है, लेकिन रमन को रेले का तर्क संतोषजनक नहीं लगा। उनका वैज्ञानिक मन इस साधारण से दृश्य में भी प्रश्न खोजने लगा कि यदि समुद्र का रंग केवल आकाश का प्रतिबिंब है, तो बादलों के दिनों में भी वह नीला क्यों दिखता है?

यही सवाल उनके मन में बस गया। भारत लौटने के बाद उन्होंने साधारण उपकरणों से प्रकाश और तरल पदार्थों पर प्रयोग शुरू किए। उनके पास अत्याधुनिक प्रयोगशाला नहीं थी, फिर भी उन्होंने कांच की बोतलों, सूरज की रोशनी और साधारण स्पेक्ट्रोस्कोप की मदद से गहन अध्ययन किया। इन प्रयोगों से उन्होंने सिद्ध किया कि जब प्रकाश किसी पारदर्शी पदार्थ से गुजरता है, तो उसका कुछ हिस्सा विखरित होकर अपना तरंगदैर्घ्य बदल लेता है।

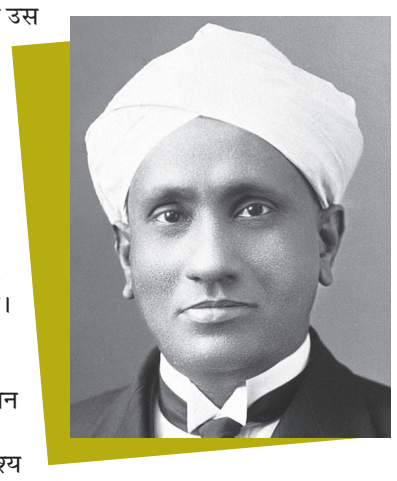

यही खोज आगे चलकर 'रमन प्रभाव' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रभाव ने यह स्पष्ट कर दिया कि समुद्र का नीला रंग आकाश का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि प्रकाश के प्रकीर्णन का परिणाम है। इस खोज के लिए सी. वी. रमन को 1930 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला। यह किसी भारतीय वैज्ञानिक को मिला पहला नोबेल पुरस्कार था। यह किस्सा हमें सिखाता है कि वैज्ञानिक दृष्टि केवल प्रयोगशाला तक सीमित नहीं होती। एक जिज्ञासु नजर और सवाल पूछने की आदत भी महान खोजों की नींव रखती है।

वैज्ञानिकों के आकर्षण का केंद्र होगा धूमकेतु-3 आई एटलस

इस पूरे वर्ष बहुचर्चित धूमकेतु-3 आई एटलस वैज्ञानिकों के आकर्षण के केंद्र में रहेगा। दूसरी दुनिया से आए इस धूमकेतु की कौमा जैसी पूंछ का रंग अब हरा हो चला है। चौड़ाई में आकार 6 किमी तक है। यह एक असामान्य सक्रिय धूमकेतु है, जिसकी सतह पर संभवत: बर्फ के ज्वालामुखी विस्फोट हो रहे हैं। यह जानकारी नासा की हबल अंतरिक्ष दूरबीन के जरिए सामने आई है।

बबलू चंद्रा
नैनीताल

अंतरिक्ष में धूमकेतुओं का अपना अलग रोमांच है और वह धूमकेतु तब और भी रोमांच पैदा कर देता है, जब वह हमारे सौर मंडल का न होकर किसी दूसरी दुनिया से आया हो। यही वह मौका है, जो किसी दूसरे सौर मंडल के रहस्यों को उजागर कर सकता है। जिस कारण नासा और ईसा जैसी प्रमुख अंतरिक्ष एजेंसियां गंभीरता से इसके ऑब्जर्वेशन में जुटी हुई हैं। अभी तक हुए अध्ययन के बाद इस धूमकेतु के बारे में कुछ नई जानकारियां सामने आ सकी हैं, जिससे पता चलता है कि इसका धूल भरा कौमा यानी पूंछ अब लाल रंग से हरे रंग में तब्दील हो चुकी है। चौड़ाई में इसका आकार 440 मीटर से 6 किमी के बीच होने का अनुमान वैज्ञानिकों ने जताया है।

बहरहाल इसके आकार की सही जानकारी मिलनी अभी बाकी है। इसके रंग बदलने का कारण द्विपरमाण्विक कार्बन का उत्सर्जन माना जा रहा है। इस धूमकेतु की सतह में हलचल यानी सक्रियता अधिक हो रही हैं, जिस कारण इसे असामान्य माना जा रहा है। इसकी सतह पर बर्फ के ज्वालामुखी विस्फोट हो रहे हैं, इसके संकेत वैज्ञानिकों को मिले हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार यह धूमकेतु इस वर्ष जून तक जमीनी दूरबीनों से देखा जा सकेगा।

इसके बाद साल के अंत में पुनः पृथ्वी पर मौजूद दूरबीनों से देखा जा सकता है। इस बीच अंतरिक्ष दूरबीन जेम्स वेब स्पेस टेलीस्कोप और हबल से इस पर नजर रखी जाएगी। इसके अलावा बृहस्पति ग्रह पर मौजूद दूरबीन जूसी भी इसकी निगरानी करेगा और इसकी तस्वीरें हम तक भेजेगा। वर्तमान में यह धुंधला ही नजर आ रहा है। जिस कारण साधारण दूरबीनों से देख पाना आसान नहीं है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस धूमकेतु के अध्ययन के लिए पूरा साल है, जो किसी दूसरी दुनिया के सौर मंडल की जानकारी दे जाएगा।

धूमकेतुओं से पता चलता है सौर मंडल की वास्तविकता

आर्यभट्ट प्रेक्षण विज्ञान शोध संस्थान एरीज के वरिष्ठ खगोल वैज्ञानिक डॉ. शशिभूषण पांडे के अनुसार धूमकेतुओं से सौर मंडल के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। यह किसी भी सौर मंडल के निर्माण के अवशेष होते हैं। जिस कारण सौर मंडल की आयु और वहां मौजूद पिंडों का पता लगाया जा सकता है, जिससे धूमकेतु-3 आई एटलस का महत्व बढ़ जाता है, जो किसी दूसरे सौर मंडल के बारे में जानकारी दे सकता है।

जंगल की दुनिया

पर्पल फ्रॉग (बैंगनी मेढक) धरती का रहस्यमय जीव

पर्पल फ्रॉग, जिसे हिंदी में बैंगनी मेढक कहा जाता है, प्रकृति के सबसे अद्भुत और रहस्यमय जीवों में से एक है। इसका वैज्ञानिक नाम नासिकाबत्रेकस सह्याद्रेंसिस (Nasikabatrachus sahyadrensis) है। यह दुर्लभ प्रजाति केवल भारत के पश्चिमी घाट क्षेत्र में पाई जाती है, जो अपनी जैव-विविधता के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है।

बैंगनी मेढक का शरीर अन्य मेढकों से बिल्कुल अलग होता है। इसका रंग गहरा बैंगनी, शरीर गोल-मटोल और थूथन सूअर की नाक जैसा दिखाई देता है। इसकी आंखें छोटी होती हैं और मुंह संकरा, जिससे यह जमीन के नीचे रहने के लिए पूरी तरह अनुकूलित है। यह मेढक अपने जीवन का अधिकांश समय भूमिगत बिताता है और आमतौर पर इंसानों की नजरों से दूर रहता है।

पर्पल फ्रॉग की सबसे अनोखी विशेषता इसका जीवन-चक्र है। यह साल में केवल मानसून के कुछ ही दिनों के लिए जमीन के ऊपर आता है। इसी दौरान यह प्रजनन करता है। नर मेढक की आवाज तेज और अनोखी होती है, जो जमीन के नीचे से भी सुनाई देती है। इसके टैडपोल चट्टानों से चिपककर बहते पानी में विकसित होते हैं, जो इसे अन्य प्रजातियों से अलग बनाता है। इसका मुख्य भोजन दीमक और छोटे कीड़े होते हैं, जिन्हें यह अपनी लंबी, चिपचिपी जीभ से पकड़ता है। जंगलों में रहने वाली इडुकी इन्हें कई पीढ़ियों से जानते और समझते हैं। माना जाता है कि इन जीवों का प्राचीन वंश लगभग 12 करोड़ वर्षों से स्वतंत्र रूप से विकसित हो रहा है, और इन्होंने नए महाद्वीपों के निर्माण, महान डायनासोर के विनाश, हिमयुग और मनुष्यों के प्रमुख प्रजाति बनने जैसी घटनाओं को जीवित रहते हुए देखा है। वैज्ञानिकों के लिए यह गोंडवानालैंड नामक महाद्वीप के अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण जैविक प्रमाण हैं।

आज पर्पल फ्रॉग संकटग्रस्त (Endangered) प्रजातियों की सूची में शामिल है। जंगलों की कटाई, सड़क निर्माण और मानवीय गतिविधियों के कारण इसका प्राकृतिक आवास तेजी से नष्ट हो रहा है। ऐसे में इस अनोखे जीव का संरक्षण न केवल पर्यावरण संतुलन के लिए आवश्यक है, बल्कि हमारी प्राकृतिक धरोहर को बचाने की जिम्मेदारी भी है।